# भारत में राज्यपाल की स्थिति M.A. IV Sem.

## [POSITION OF THE GOVERNOR]

राज्यपाल की स्थिति एक संवैधानिक प्रमुख की है और उसे राज्य के शासन में वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। यह विचार संविधान निर्माताओं का था। **डॉ. अम्बेडकर** ने संविधान सभा में कहा था कि, "राज्यपाल को कोई कार्य स्वविवेक या व्यक्तिगत निर्णय से नहीं करने हैं। संविधान के अनुसार उसे सभी मामलों में मन्त्रि-परिषद् के परामर्श से ही कार्य करना है।" **के. एम. मुंशी** का मत था कि, "राज्यपाल को मन्त्रियों के निर्णय को अस्वीकार करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है तथा उसकी स्थिति वही है जो कि इंग्लैण्ड के सम्राट तथा साम्राज्ञी की है।" **टी. टी. कृष्णमाचारी** का मत था कि, "राज्यपाल एक संवैधानिक अध्यक्ष है

5.

तथा उसे वास्तविक प्रशासन में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।" पी. एस. देशमुख के विचार भी इसी प्रकार के थे। **सुनील कुमार बोस** बनाम **मुख्य सचिव पश्चिमी बंगाल** के केस में कोलकाता उच्च न्यायालय ने राज्यपाल की स्थिति स्पष्ट करते हुए अपने विचार दिये कि, "वर्तमान संविधान में राज्यपाल मन्त्रियों के परामर्श के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। भारत सरकार अधिनियम, 1935 में स्थिति भिन्न थी। वर्तमान संविधान में स्वविवेक से व्यक्तिगत रूप से कार्य करने की उसकी शक्ति को छीन लिया गया है, अतः वह मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करेगा।"

मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल **डॉ. पट्टाभि सीतारमैया** के शब्दों में, "राज्यपाल का कार्य मेहमानों की इज्जत करने, उनकी चाय, भोजन तथा दावत देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

**एम. आर. पलांदे** (M. R. Palande) के शब्दों में, "यहाँ राज्यपाल की जितनी शक्तियाँ गिनायी गयी हैं, उनसे यह नहीं समझना चाहिए कि उसके हाथों में साधारण शक्तियाँ संचित हैं। वह वास्तव में शक्तिहीन और सदैव मन्त्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करने वाला है। वह केवल संवैधानिक तथा प्रतीकात्मक प्रमुख है। उसका यदि कोई भाग है, तो केवल ऐसी सम्मानता और पक्षपात रहित महिमाशाली व्यक्ति का भाग है, जो किसी दल की राजनीति के भँवर से ऊपर हो और जब कभी सरकार के प्रमुख को उनकी सलाह तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता हो, तब उसके लिए तत्पर हो।"

**डॉ. पी. के. सेन** (P. K. Sen) ने राज्यपाल के पद की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि, "राज्यपाल का कार्य शासन व्यवस्था के कुशल संचालन में सहायता तथा सहयोग देना है, न कि नियन्त्रण और विरोध डालना।"

संविधान के **अनुच्छेद 163** के अनुसार, "जिन बातों में इस संविधान द्वारा उसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमन्त्री होगा।" इस आधार पर भी राज्यपाल को साधारणतया विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी मन्त्रि-परिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य करना होगा।

**एम. वी. पायली** ने इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि, "जब तक राज्यपाल मन्त्रि-परिषद् के परामर्श पर कार्य करता है और विधानमण्डल के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल गवर्नर को उसके शासन कार्य में सहायता तथा परामर्श देता है तब तक राज्यपाल के लिए उनके परामर्श की अवहेलना करने की बहुत ही कम सम्भावना है।" इस प्रकार राज्यपाल की स्थिति नाममात्र के अध्यक्ष की है।

## राज्यपालों के स्वविवेकी कार्य

[DISCRETIONARY FUNCTIONS OF THE GOVERNERS]

दुर्गा दास बसु और एम. सी. सीतलवाड ने राज्यपाल के कुछ स्वविवेकी कार्य बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं—

**1. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति**—राज्यपाल का पहला कार्य राज्य में मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करना होता है। यदि राज्य विधान सभा में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत मिल जाता है तब



तो उस दल के नेता को मुख्यमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित करना अनिवार्य हो जाता है, परन्तु जब किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत राज्य विधान सभा में न हो और मुख्यमन्त्री पद के लिए एक से अधिक दावेदार हों तो उस समय किसे मुख्यमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित किया जाये, यह राज्यपाल के स्वविवेक पर निर्भर करता है। राज्यपाल को मुख्यमन्त्री पद पर आमन्त्रित करने से पहले यह देखना होता है कि किस व्यक्ति के नेतृत्व में स्थायी सरकार का गठन हो सकता है।

राज्यपालों ने अनेक अवसरों पर स्वविवेक का प्रयोग करते हुए मुख्यमन्त्रियों की नियुक्ति की; जैसे—चेन्नई के राज्यपाल श्री प्रकाश ने 1952 में टी. प्रकाशन के बहुमत की अवहेलना करके सी. राजगोपालाचारी को मुख्यमन्त्री नियुक्त किया जबकि सी. राजगोपालाचारी विधान सभा के सदस्य भी नहीं थे और कांग्रेस को सदन में बहुमत भी प्राप्त नहीं था। 1957 में उड़ीसा में तथा 1983 में केरल के मुख्यमन्त्रियों की नियुक्ति भी राज्यपाल के स्वविवेकीय नियुक्तियाँ थीं। 1969 में उत्तर प्रदेश में चरणसिंह की नियुक्ति, 1970 में पंजाब में प्रकाश सिंह बादल की नियुक्ति इसके उदाहरण हैं।

**2. मन्त्रि-परिषद् भंग करना**—राज्यपाल को यह स्वविवेकीय शक्ति प्राप्त है कि वह उस राज्य की मन्त्रि-परिषद् को अपदस्थ करके राष्ट्रपति से उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश करे। राज्यपाल निम्न परिस्थितियों में ऐसा कर सकता है—

(i) यदि राज्यपाल को यह विश्वास हो जाये कि उसके राज्य में मन्त्रि-परिषद् का विधान सभा में बहुमत नहीं रहा है तो राज्यपाल मुख्यमन्त्री के त्यागपत्र देने या विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहे और मुख्यमन्त्री विधान सभा का सत्र बुलाने को तत्पर न हो तो राज्यपाल ऐसी परिस्थिति में मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ कर सकता है।

(ii) यदि राज्य की विधान सभा मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे और मन्त्रिमण्डल तब भी त्यागपत्र न दे तो राज्यपाल उसे पदच्युत कर सकता है।

(iii) यदि राज्यपाल को यह विश्वास हो जाये कि उसके राज्य का मन्त्रिमण्डल संविधान के अनुसार कार्य नहीं कर रहा है, या उसकी नीतियों से राज्य या केन्द्र को खतरा है या उससे केन्द्र और राज्य में तनाव की स्थिति हो रही है, तो राज्यपाल मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर सकता है।

(iv) यदि मुख्यमन्त्री को स्वतन्त्र ट्रिब्यूनल ने भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी करार दे दिया हो तो भी राज्यपाल उसे पदच्युत कर सकता है।

**3. विधान सभा का अधिवेशन बुलाना**—सामान्यतया मुख्यमन्त्री के परामर्श से राज्यपाल विधान सभा का अधिवेशन बुलाता है। परन्तु यदि राज्यपाल की दृष्टि में ऐसे कुछ मुद्दे हैं जिन पर तुरन्त विचार होना चाहिए तो वह अनुच्छेद 174 के आधार पर विधान सभा का सत्र बुलाने की तिथि घोषित कर सकता है, चाहे मुख्यमन्त्री इससे सहमत न भी हो।

**4. विधान सभा को भंग करना**—सामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल मुख्यमन्त्री के परामर्श से विधान सभा भंग करता है परन्तु विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल विधान सभा भंग करने के सम्बन्ध में मुख्यमन्त्री के परामर्श को मानने से मना कर सकता है या मुख्यमन्त्री

दूसरी ओर सन् 1970 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल गोपाल रेड्डी ने ऐसी उपधारणा के आधार पर मुख्यमन्त्री चरण सिंह को पदच्युत कर दिया। राज्यपाल ने विधान सभा के निर्णय की प्रतीक्षा नहीं की जबकि विधान सभा का अधिवेशन कुछ दिनों बाद ही होने वाला था।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि हमने इंग्लैण्ड की संसदीय पद्धति को अपनाया है और इसमें प्रधानमन्त्री के मन्त्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व कॉमन सभा के प्रति होता है। वे अपना पद तब तक धारण करेंगे जब तक उन्हें कॉमन सभा में बहुमत प्राप्त है।

इस आधार पर राज्य का मुख्यमन्त्री और उसका मन्त्रिमण्डल भी तब तक सरकार में रहना चाहिए जब तक उसे विधान सभा में बहुमत प्राप्त है। यदि राज्यपाल यह समझता है कि मुख्यमन्त्री के मन्त्रिमण्डल का सदन में बहुमत नहीं रह गया है तो इसके लिए विधान सभा में बहुमत सिद्ध करने के लिए मुख्यमन्त्री को विधान सभा का अधिवेशन बुलाने के लिए निर्देश देना चाहिए जिससे वह अपना बहुमत सिद्ध कर सके, राज्यपाल को अपनी इच्छा से निर्णय नहीं करना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 164 (2) के अनुसार मन्त्रि-परिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायी है।

इस सम्बन्ध में एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के 9 न्यायाधीशों की पीठ ने अपना निर्णय दिया कि जब कभी यह शंका हो कि मन्त्रिमण्डल ने सदन में समर्थन खो दिया है तो इसका एकमात्र परीक्षण सदन के धरातल पर होगा। मन्त्रिमण्डल की शक्ति का निर्धारण किसी व्यक्ति की निजी राय का विषय नहीं है, चाहे वह व्यक्ति राज्यपाल हो या राष्ट्रपति।

इस प्रकार राज्यपाल के पद को राजनीतिक विवादों से मुक्त रखने के उद्देश्य से उसके स्वविवेकीय अधिकारों के प्रयोग के लिए पिछले वर्षों में कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सुझाव दिये जाते रहे हैं। लेकिन कोई ऐसे सिद्धान्त नहीं बनाये जा सके हैं जो सभी परिस्थितियों में लागू हो सकें। इस सन्दर्भ में भारतीय राज-व्यवस्था के अध्ययनकर्ता के लिए राज्यपाल की स्थिति, पद-प्रतिष्ठा, नियुक्ति प्रणाली तथा शक्तियों के सम्बन्ध में नये सिरे से अवलोकन करने की आवश्यकता है।

के परामर्श के बिना ही विधान सभा भंग कर सकता है। उदाहरणार्थ—1984 में जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल जगमोहन ने फारूख अब्दुल्ला मन्त्रिमण्डल की विधान सभा भंग करने की सिफारिश को नहीं माना। 1976 में तमिलनाडु के राज्यपाल ने मुख्यमन्त्री के परामर्श के बिना ही विधान सभा को भंग कर दिया। इस प्रकार 1995 में आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल ने एन. टी. रामाराव मन्त्रिमण्डल की विधान सभा भंग करने सम्बन्धी सलाह को स्वीकार नहीं किया।

**राज्यपाल केन्द्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में (Governor as a Agent of the Central Government)**

राज्यपाल जहाँ एक ओर राज्य का संवैधानिक मुखिया होता है वहीं वह दूसरी ओर केन्द्र सरकार का अभिकर्ता भी होता है। केन्द्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में राज्यपाल निम्न कार्य करता है—

(i) केन्द्र सरकार के आदेश-निर्देश राज्यपाल के माध्यम से ही राज्य सरकार को दिये जाते हैं। राज्यपाल का यह भी कर्तव्य है कि वह यह देखे कि राज्य सरकार इन आदेश-निर्देशों का पालन कर रही है अथवा नहीं।

(ii) केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता के रूप में राज्यपाल समय-समय पर राष्ट्रपति को राज्य के प्रशासन की रिपोर्ट भेजता है। राज्यपाल अपने पद ग्रहण के समय संविधान की रक्षा की शपथ लेता है इसलिए उसका यह कार्य होता है कि वह यह देखे कि राज्य सरकार संविधान के अनुसार कार्य करती रहे। यदि राज्यपाल यह देखता है कि राज्य में संविधान के अनुसार कार्य नहीं हो रहा है तो राज्यपाल राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देगा जिसके आधार पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो सकता है।

(iii) अनुच्छेद 200 के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह विधानमण्डल द्वारा पास किये किसी बिल को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज सकता है।

(iv) अनुच्छेद 213 राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति देता है, परन्तु कुछ विषयों के सम्बन्ध में अध्यादेश जारी करने से पूर्व उसे राष्ट्रपति से स्वीकृति लेनी होती है।

इस प्रकार राज्यपाल राज्य के संवैधानिक मुखिया की अपेक्षा केन्द्र के अभिकर्ता की भूमिका को अधिक महत्व देता है। **के. वी. राव** के शब्दों में, "आज जैसी उसकी स्थिति है उसे केन्द्र द्वारा नियुक्त किया व हटाया जाता है। राज्यपाल वही है जो केन्द्र उसे बनाना चाहता है, वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है जो राज्यपाल अपने आप कर सके। उसकी भूमिका उस पर निर्भर है जो पीछे बैठा व्यक्ति अपनी डोरियों से कर रहा है।"

**राज्यपाल की व्यावहारिक भूमिका (Practical Role of the Governor)**

सन् 1950 से 1967 तक राज्यपाल साधारणतया संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे। तब तक केन्द्र तथा राज्यों में एक ही दल कांग्रेस की सरकारें रहीं। परन्तु चौथे आम चुनाव (1967) के पश्चात् राजनीतिक स्थिति में अन्तर आया, जिससे कांग्रेस को 7 राज्यों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका और विरोधी दलों ने संयुक्त मोर्चा बनाकर मिली-जुली सरकारें (Coalition Governments) बनायीं। तब राज्यपाल की राजनीति में व्यावहारिक





भूमिका प्रभावी हुई। विरोधी दलों ने कांग्रेस के विरोध में सत्ता प्राप्त करने के लालच में राजनीतिक विचारधाराओं को त्यागकर नये-नये गठबन्धन (Alliances) बनाये और दल-बदल (Defection) करने लगे।

ऐसी स्थिति में स्थिर सरकार बनना असम्भव होने लगा। जब किसी राज्य में किसी भी गठबन्धन की कोई सरकार नहीं बन पाती तो वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाता है। मार्च, 1967 से मार्च, 1972 तक विभिन्न राज्यों में 15 बार राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।

ऐसी स्थिति में राज्यपालों के स्वविवेकीय शक्तियों का क्षेत्र विस्तृत हो गया। राज्यपाल ने निम्न क्षेत्रों में अपनी स्वविवेकीय शक्तियों का प्रयोग किया—

(i) सरकार का गठन करने के लिए बहुमत का निर्धारण तथा मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करना।

(ii) विधानमण्डल के अधिवेशन को बुलाना तथा सत्रावसान करना और विधान सभा को भंग करना।

(iii) राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए सिफारिश करना।

जहाँ एक दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता था, वहाँ विरोधी दल अपने-अपने बहुमत का दावा करते थे, वहाँ राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करने का अवसर मिल जाता था। वह निर्णय करना उसी का कार्य था कि वह किस गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करे। इन परिस्थितियों में राज्यपालों की कार्य-प्रणाली पर यह दोष लगाया गया कि उन्होंने अपनी विवेक की शक्ति का प्रयोग करने में पक्षपात का सहारा लिया है।

के. एम. मुंशी के अनुसार कुछ परिस्थितियों में राज्यपाल द्वारा प्रभावी तौर पर कार्य किये जा सकते हैं। **वी. जी. खेर** के शब्दों में, "एक अच्छा राज्यपाल बहुत लाभ पहुँचा सकता है और एक बुरा राज्यपाल दुष्टता भी कर सकता है, यद्यपि संविधान में उसको बहुत कम शक्तियाँ दी गयी हैं।"

सन् 1967 के चौथे आम चुनाव के बाद राजनीतिक परिस्थितियों ने यह पलटा खाया कि राज्यपाल ने पहली बार यह अनुभव किया कि संविधान ने उसे जो शक्तियाँ प्रदान की हैं उनका वह उपयोग भी कर सकता है और तेजी से बदलते हुए राजनीतिक परिवेश में वह अब केवल नाममात्र की कार्यपालिका, हस्ताक्षरकर्ता अथवा Rubber Stamp (रबड़ की मोहर) ही नहीं बना रह सकता है।

एक प्रश्न बार-बार उभरकर सामने आता है कि क्या राज्यपाल मुख्यमन्त्री के नेतृत्व वाली मन्त्रि-परिषद् को इस आधार पर पदच्युत कर सकता है कि मुख्यमन्त्री और मन्त्रिमण्डल ने विधान सभा में अपना बहुमत खो दिया है। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि समान परिस्थितियों में दो राज्यपालों ने परस्पर विरोधी निर्देश दिये।

प. बंगाल में सन् 1967 में राज्यपाल धर्मवीर का मत था कि अजय मुखर्जी के नेतृत्व वाले संयुक्त मोर्चा मन्त्रिमण्डल ने उनके पक्ष से दल-बदल के कारण विधान सभा में बहुमत खो दिया है इसलिए उन्होंने मुख्यमन्त्री से यह कहा कि वे लघु सूचना पर विधान सभा का अधिवेशन बुलायें और जब मुख्यमन्त्री ने ऐसा करने से मना कर दिया तो राज्यपाल ने मुख्यमन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर दिया।